आत्मज्ञान प्राप्त करने के सरल से तरीके

आत्मज्ञान एक गहरी और आंतरिक सामग्री है जो व्यक्ति को अपनी आत्मा को समझने एवं जानने में सहायता करती है। आत्मज्ञान एक साधना और सामर्थ्य का परिणाम होता है जिसमें व्यक्ति अपनी आत्मा को और बेहतर से जानने और समझने का प्रयास करता है।

यहां कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है:

1. **ध्यान और मेडिटेशन:** ध्यान और मेडिटेशन के माध्यम से व्यक्ति अपने आत्मा के आंतरिक स्वरूप की तरफ केंद्रित हो सकता है। यह एक ऐसा मार्ग है जिससे मनुष्य अपनी आत्मा की आंतरिक शांति की तरफ खिंचा जाता है। इस मार्ग से मनुष्य को इस बात की समझ आना सम्भव हो जाती है कि सब कुछ मेरे अंदर ही है,

मेरे अंतःकरण में ही है क्योंकि मेरे अंदर ही तो परमात्मा (परम-आत्मा)   का वास् है।

2. स्वाध्याय (स्वयं का अध्ययन): स्वाध्याय, स्वयं को समझने के लिए, स्वयं की पढ़ाई और अध्ययन के माध्यम से मदद कर सकता है। यह आत्मा के गहरे पहलुओं की समझ में सहायता करके आंतरिक पहलुओं को समझने की सहायता कर सकता है।

3.संयम (कण्ट्रोल): आत्मा को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण सूत्र संयम (संयमित जीवन) का पालन करना है। सबसे महत्वपूर्ण होने के कारण यह सूत्र सबसे कठिन भी है। संयम के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं को 1-2 वर्ष के नटखट शिशु की भांति समझे जो ईश्वर से अथाह ऊर्जा का सागर लेकर इस धरती पर अवतरित

हुआ है। अथाह ऊर्जा के कारण वह कभी सोफे के ऊपर, कभी सीढ़ीओं के नीचे, कहीं इधर तो कहीं उधर भागा फिरता है, माँ तो सारा दिन उसके पीछे ही रहती है, कभी डाँट-फटकार तो कभी प्यार दुलार से उसे एक-एक सीढ़ी चढ़ना सिखाती है। मनुष्य को चाहिए कि अपने मन को मातृत्व के साथ उत्तम मार्गदर्शन प्रदान करें क्योंकि "दिल बच्चा" ही तो है। इसलिए अक्सर कहा गया गया है: If you give a long rope to the children, they will hang themselves. संयम में इंद्रियों को नियंत्रित करने का प्रयास शामिल है ताकि कहीं लम्बे रस्से से मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत अपनी जान ही लेने को विवश न हो जाए।

4. गुरु का मार्गदर्शन: आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु का मार्गदर्शन बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है। गुरु एक अनुभवी व्यक्ति (परम पूज्य गुरुदेव) होता है जो आत्मा के आंतरिक updates प्रदान करता रहता है। गुरु के सानिध्य में जो आत्मिक सुख का आभास होता है,उसके लिए "गूंगे के गुड़" वाला उदाहरण ही उचित रहेगा। ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार में बार-बार गुरुदेव के साहित्य को पढ़ने, समझने और समझकर औरों को समझाने का निवेदन किया जाता है क्योंकि जिनको गुरुदेव का साक्षात् सानिध्य प्राप्त न हो पाया, उनके लिए "यह साहित्य ही गुरुदेव हैं।" इस साहित्य में इतनी शक्ति है कि इसे पढ़कर आप अवश्य ही गुरुदेव को अपने अंदर स्थापित कर लेंगें ऐसा हमारा विश्वास है।

संलग्न वीडियो में गुरुदेव स्वयं ही वोह बात कह रहे हैं जो ऑनलाइन ज्ञानरथ गायत्री परिवार की Tagline है।

https://youtube.com/shorts/nF6PqsTP0ZQ?si=Qvfu978N_w93yUF0

आत्मज्ञानी व्यक्ति वह होता है जिसने अपने आत्मा को और ज्यादा समझ लिया है और अपने आत्मता के साथ एक गहरा और सुखमय जीवन जीता है। वह अपनी आत्मा को समझने में महान प्रयास करता है और अपने कार्यों में आत्मा के मूल्यों (मानवीय मूल्यों) का पालन करता है। ऐसा करने से आत्मज्ञानी

व्यक्ति अकल्पनीय शांति, समृद्धि और आंतरिक सुख का अनुभव करता है।

क) आत्मज्ञान के लिए राजा और महात्मा की कथा :

एक राजा जंगल में घर का रास्ता भूल गया। सामने देखा एक तालाब था। उस तालाब के किनारे एक महात्मा तपस्या कर रहे थे। राजा ने सोचा मैं पहले तालाब में स्नान करके शरीर को पवित्र कर लूं फिर महात्मा के पास जाकर ज्ञान ध्यान की बातें सुनू। राजा ने कपड़े उतारकर जब तालाब में गोता लगाया तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि "मैं शरीर नहीं हूँ", उसके बाद दूसरा गोता लगा तो अनुभव किया "मैं आत्मा हूँ" अब तीसरा गोता लगाया तो अनुभव हुआ कि "मैं ही परमात्मा हूँ" और जब चौथा गोता लगाया तो अनुभव

हुआ कि मैं सर्व ब्रह्मांड में “मैं ही सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ, मैं सर्व संसार का मूल आधार हूँ, अधिष्ठान हूँ,
मेरी ज्ञानचेतना से सर्व संसार रोशन हो रहा है। मैं राजा नहीं हूँ, मैं सर्व ब्रह्मांड का स्वामी सर्वनाम रूप की आधारशिला हूँ। यह जंगल, संसार मेरी चेतना ज्ञान में मंगलमय हो रहा है । ऐसा विचार करते-करते तालाब में खड़े-खड़े राजा की समाधि लग गई ।

उधर महात्मा की समाधि खुली और देखा कि तालाब में एक राजा खड़ा हुआ है और समाधि लगी हुई है।
महात्मा ने कहा राजन आंखे खोलो, पता नहीं कब से तालाब में खड़े हो। राजा की समाधि टूटी और
कहा,“स्वामी मैं राजा नहीं हूँ, मैं आत्मा परमात्मा हूँ, मेरे नूर से सर्व ब्रह्मांड रोशन हो रहा है। पता नहीं इस

जल में क्या करामात थी जिसने एक अज्ञानी मूर्ख राजा को पल भर में उस ज्ञान-धन से मालामाल कर दिया जिसे ऋषि, मुनि, भोगी, तपस्वी बहुत यत्न से भी प्राप्त नहीं सकते। प्रभु मुझे इस जल में रहने दो। महात्मा ने कहा जो तुम्हें तुम्हारा "निश्चय" तालाब में मिल चुका है वह लुप्त नहीं हो सकता । तुम बाहर आ जाओ । तब राजा तालाब से बाहर आकर महात्मा के चरणों में नमस्कार करके बैठ गया   और उसने   जल की करामात का प्रश्न किया। महात्मा ने कहा, "मैं बचपन से ही इस तालाब के किनारे तप, तपस्या, आराधना करता आ रहा हूँ । मेरा निश्चय वही है जो तुम्हें मिला है । मेरी तपस्या से जल भी वैसा हो गया है, जब मैं स्नान करता हूँ तो मेरी भी समाधि लग जाती है । हे राजन

यह सब मेरी तपस्या “निश्चय” का फल है। अगर अज्ञानी लोग भी आकर इसमें गोता लगा ले तो उनका भी “निश्चय” हमारे जैसा हो जाएगा।

राजा पूछने लगा इस बात पर कौन विश्वास करेगा?

महात्मा ने उत्तर दिया :

लोगों को सच झूठ की पहचान ही नहीं है। संसारी लोग तो सूर्य,चंद्रमा, नक्षत्र की रोशनी को सत्य मानते हैं लेकिन यह नहीं जानते कि एक चेतना जिसके प्रसार से यह सब कुछ रोशन हो रहा है, वही सब कुछ है। मनुष्य तो केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि के के कीचड़ से लथपथ हुए जा रहा है। महात्मा ने मनुष्य की सूअर से तुलना करते हुए बताया कि जिस

प्रकार सूअर कीचड़ में स्नान करके अपने को पवित्र मानता हैं, उसी प्रकार मूर्ख प्राणी सर्वव्यापी ज्ञान के आलोक में जागकर भी अज्ञान के अन्धकार में भटक रहा है। ज्ञान का अंधकार बार-बार उनको जन्म-मरण की खाई में गिरा देता है। इस खाई में गिरते ही काम-क्रोध, लोभ-मोह की जोकें चिपट जाती हैं और जीवन भर उसका खून चूस कर खुश होती रहती हैं। खाई में गिरे प्राणी को भला काम-क्रोध, लोभ-मोह की जोकों का बोध कैसे हो सकता है।

यह सब जादूगरी का खेल है।

जीवन भर मनुष्य बिना किसी ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा क, इस जादूगर के आगे नाचता रहता है। कभी हानि तो कभी लाभ, कभी जय तो कभी पराजय आती जाती रहती है । हानि आती है तो रोता है, लाभ होता है तो खुश होता है। इसी तरह चारों ओर अज्ञान के अंधकार में, मौत की चट्टानों से टकराकर फिर मां के गर्भ में आ बैठता है। जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है मनुष्य को न तो चैन और शांति नहीं मिली और न ही उसने इसके लिए उपाय भी किये। अंत में हारे हुए ज्वारी की तरह संसार से विदा हो जाता है। हे राजन! तुम्हारे पिछले जन्मों के शुभ कर्म ही तुम्हें यहाँ खींच लाए हैं और तुम्हें यह “आत्मज्ञान” का धन मिला है। रास्ता भूल जाना, तालाब पर पहुंचकर स्नान करना,

कोई कारण ही होगा। वह कारण ही आत्मज्ञान के समीप ले आया। यह आत्मज्ञान की प्राप्ति तुम्हारे लिए सुखदाई हो गई। इसीलिए कहते हैं: Everything happens for a reason.

हे राजन अब तुम जाओ और राज्य करो और इस ज्ञान के आलोक से अनेकों को ज्ञान का दान देने की कोशिश करो। यह ज्ञानप्राप्ति "अमृत का कुंड" है, सृष्टि रहने तक इस अमृतकुंड का विस्तार होता ही जायेगा।

....

ख) विद्याधर जी विद्वान तो थे लेकिन आत्मज्ञानी नहीं :

यह छोटा सा विवरण अखंड ज्योति अप्रैल 1969 में प्रकाशित हुआ था ।

काकभुसुण्डि जी के मन में एक बार यह जानने की इच्छा हुई कि क्या संसार में ऐसा भी कोई दीर्घजीवी व्यक्ति है, जो विद्वान् भी हो लेकिन उसे आत्मज्ञान न हुआ हो ? इस बात का पता लगाने के लिए वे महर्षि वशिष्ठ से आज्ञा लेकर निकल पड़े। ग्राम ढूँढ़ा, नगर ढूँढ़े, वन और कंदराओं की खाक छानी, तब कहीं जाकर विद्याधर नाम के ब्राह्मण से भेंट हुई, पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी आयु चार कल्प (हज़ारों वर्ष) की हो चुकी है और उन्होंने वेद-शास्त्रों का परिपूर्ण अध्ययन किया है। शास्त्रों के श्लोक उन्हें ऐसे कंठस्थ थे, जैसे तोते को राम-नाम। किसी भी शंका का समाधान वे आसानी से कर देते थे।

काकभुसुण्डि जी को उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, किंतु उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने विद्वान् होने पर भी विद्याधर को लोग आत्मज्ञानी क्यों नहीं कहते।

यह जानने के लिए काकभुसुण्डि जी चुपचाप विद्याधर के पीछे घूमने लगे। विद्याधर एक दिन नीलगिरि पर्वत पर वन-विहार का आनंद ले रहे थे, तभी उन्हें कंवद की राजकन्या आती दिखाई दी। नारी के सौंदर्य से विमोहित विद्याधर प्रकृति के उन्मुक्त आनंद को भूल गए, कामावेश ने उन्हें इस तरह दीन कर दिया, जैसे मणिहीन सर्प। वे राजकन्या के पीछे इस तरह चल पड़े जैसे मृत पशु की हड्डियाँ चाटने के लिए कुत्ता। उस समय उन्हें न शास्त्र का ज्ञान रहा, न पुराण का। राजकन्या की उपेक्षा से भी उन्हें बोध नहीं हुआ। वे उसके पीछे लगे

चले गए, सिपाहियों ने समझा, यह कोई विक्षिप्त व्यक्ति है, इसलिए उन्हें पकड़कर बंदीगृह में डाल दिया।

कारागृह में पड़े विद्याधर से काकभुसुण्डि ने पूछा:

"मुनिवर आप इतने विद्वान् होकर भी यह नहीं समझ सके कि आसक्ति (Attachment) ही आत्मज्ञान का बंधन है। यदि आप काम के प्रति आसक्त न होते तो आज यह दुर्दशा क्यों होती।"

यह सुनते ही विद्याधर के ज्ञान नेत्र खुल गए और उन्हें आत्मज्ञान हो गया।

****

ग) गुरु अष्टावक्र जी की सरल कथा

कई हजार साल पहले, अष्टावक्र नाम के एक महान गुरु हुए। वह धरती के महानतम ऋषियों में से एक थे जिन्होंने उस समय एक विशाल आध्यात्मिक आंदोलन चलाया था। 'अष्टावक्र' का मतलब है 'वह इंसान जिसके शरीर में आठ अलग-अलग तरह की विकृतियां हो'। ये विकृतियां उनके पिता के श्राप के कारण उन्हें मिली थीं

अष्टावक्र ने माता के गर्भ में ही कई शिक्षाएं पा ली

जब अष्टावक्र अपनी माता के गर्भ में थे, तभी उनके पिता कहोल, जो खुद एक प्रसिद्ध विद्वान और ऋषि थे, ने उनको कई तरह की शिक्षाएं दीं।

अष्टावक्र ने गर्भ में ही ये सारी शिक्षाएं पा ली थीं और जन्म लेने से पहले ही मां की कोख में उन्होंने "आत्मा" के विभिन्न पहलुओं पर जबर्दस्त महारत हासिल कर ली थी। एक दिन शिक्षा देते समय कहोल ने एक गलती कर दी। अजन्मे बच्चे अष्टावक्र ने अपनी मां की कोख से 'हूं' कहा। उसका आशय था कि जो पिताजी कह रहे थे, वह सही नहीं है। दुर्भाग्य से उसके पिता अपना आपा खो बैठे और बच्चे को आठ अंगों से विकलांग होने का श्राप दे दिया। इसलिए बच्चा शारीरिक रूप से विकलांग पैदा हुआ: उसके दोनों पैर, दोनों हाथ, घुटने, छाती और गर्दन टेढ़े थे।

राजा जनक की "*आत्मज्ञान* " पाने की लालसा

जब अष्टावक्र थोड़े बड़े हुए, तो वह अपने पिता के साथ एक शास्त्रार्थ में गए, जिसका आयोजन वहां के राजा जनक ने किया था। जनक महान प्रतिभाशाली और असाधारण व्यक्ति थे। वह राजा होते हुए भी एक सच्चे साधक थे। वह "आत्मज्ञान" पाने के लिए आतुर थे। आत्मज्ञान पाने की उनकी चाह इतनी जबर्दस्त थी कि उन्होंने अपने राज्य के सभी आध्यात्मिक व्यक्तियों को अपने दरबार में इकट्ठा कर लिया था। वह उनका स्वागत करते थे, उन्हें सम्मान देते थे और उनकी जीविका तथा रहन-सहन की व्यवस्था करते थे। उन्हें आशा थी कि ये लोग उन्हें राह दिखा सकते हैं। वह हर दिन अपने सांसारिक कामों को फटाफट निबटाकर घंटों इन लोगों का उपदेश सुनते थे, चर्चा और वाद-विवाद

आयोजित करते थे ताकि वह "आत्मज्ञान" की राह को जान सकें। अलग-अलग आध्यात्मिक धर्मग्रंथों का अध्ययन कर चुके कई विद्वान साथ बैठकर महान शास्त्रार्थ करते थे, जो कई दिनों, सप्ताहों और महीनों तक चलता था। आम तौर पर बहस में जीतने वाले को एक बड़ा पुरस्कार मिलता था। उसे ढेर सारा धन मिलता था या राज्य में किसी ऊंची पदवी पर बिठाया जाता था। ये लोग आम लोग नहीं थे। राजा ने महान आध्यात्मिक लोगों को इकट्ठा किया था मगर कोई उन्हें "आत्मज्ञान" नहीं दिला पाया था।

राजा जनक ने अष्टावक्र की आज्ञा का पालन करके आत्मज्ञान पाया

ऐसे ही एक शास्त्रार्थ में कहोल को आमंत्रित किया गया था, जिसमें वह अष्टावक्र के साथ गए थे। शास्त्रार्थ शुरू हुआ और वहां मौजूद सर्वश्रेष्ठ विद्वानों के बीच तर्क-वितर्क होने लगा। कई बौद्धिक प्रश्न उठाए गए और धर्मग्रंथों की गूढ़ बातों पर विचार-विमर्श हो रहा था, तब अचानक अष्टावक्र उठ कर खड़े हुए और बोले:

"ये सब खोखली बातें हैं। इनमें से कोई आत्म के बारे में कुछ नहीं जानता। ये सब उसके बारे में बातें जरूर कर रहे हैं, मगर मेरे पिता समेत यहां मौजूद कोई भी व्यक्ति आत्म के बारे में कुछ नहीं जानता।"

राजा जनक ने अष्टावक्र की ओर देखा,टेढ़े-मेढे शरीर वाला यह युवक इस तरह बोल रहा था और बोले:

"क्या तुमने अभी जो कहा, उसे सही साबित कर सकते हो? अगर नहीं, तो तुम अपना यह विकलांग शरीर भी खो बैठोगे।"

अष्टावक्र ने जवाब दिया,

“हां, मैं साबित कर सकता हूं, आपको अंतिम हद तक मेरी बात मानने के लिए तैयार रहना होगा। तभी मैं आपको यह दे सकता हूं। अगर आप वही करें, जो मैं आपको करने के लिए कहूं, तो मैं ये पक्का करूंगा कि आप आत्म को जान जाएँ।”

राजा जनक को अष्टावक्र का सीधी बात करना पसंद आया और उन्होंने कहा:

“मुझे कुछ भी कहो, मैं करने के लिए तैयार हूं। ”

वह सिर्फ बोल नहीं रहे थे। वह वाकई इस बात पर गंभीर थे। अष्टावक्र बोले:

“मैं जंगल में रहता हूं। वहां आइए, फिर देखेंगे कि हम क्या कर सकते हैं। ” और वह वहां से चले गए।

कुछ दिन बाद, जनक अष्टावक्र की तलाश में जंगल में गए। जब कोई राजा कहीं जाता है, तो वह हमेशा सिपाहियों और मंत्रियों की फौज के साथ जाता है। जनक अपने लाव-लश्कर के साथ जंगल के लिए चले।

लेकिन जब वे जंगल में घुसे, तो आगे-आगे जंगल और घना होता गया। धीरे-धीरे कई घंटों की खोज के बाद जनक अपने बाकी लोगों से अलग होकर रास्ता भटक गए। जब वह जंगल में रास्ता खोजते हुए भटक रहे थे, तो अचानक से उन्हें पेड़ के नीचे बैठे हुए अष्टावक्र दिख गए।

अष्टावक्र को देखते ही, जनक घोड़े से नीचे उतरने लगे। उनका एक पांव रकाब पर था और दूसरा हवा में, तभी अष्टावक्र बोले:

"रुको! वहीं रुको!"

जनक उसी असुविधाजनक स्थिति में ठहर गए। वह घोड़े के ऊपर झूल रहे थे और उनका एक पैर हवा में था। वह उस अजीबोगरीब स्थिति में पता नहीं कितनी

देर रुके रहे। हमें नहीं पता वे कितनी देर रुके रहे। कुछ कथाओं में कहा गया है कि वह कई सालों तक वैसे ही रुके रहे, कुछ कहते हैं कि वह सिर्फ एक पल था। समय की अवधि मायने नहीं रखती। वह अच्छे-खासे समय तक उसी स्थिति में खड़े रहे। अच्छा-खासा समय एक पल भी हो सकता है।

निर्देश का पालन करने की उस पूर्णता के कारण वह पूर्ण आत्मज्ञानी हो गए। वह उसी जगह रुक गए, जहां उन्हें रुकना था।

राजा जनक बने एक आत्मज्ञानी राजा

आत्मज्ञान पाने के बाद जनक घोड़े से उतरे और अष्टावक्र के पैरों पर गिर पड़े। वह अष्टावक्र से बोले:

“मैं अपने राज्य और महल का क्या करूं? अब मेरे लिए ये चीजें कोई अहमियत नहीं रखतीं। मैं बस आपके चरणों में बैठना चाहता हूं। कृपया मुझे यहीं अपने आश्रम में अपने साथ रहने दें।”

मगर अष्टावक्र ने जवाब दिया:

“अब जब आपने आत्मज्ञान पा लिया है तो आपका जीवन आपकी पसंद-नापसंद से जुड़ा नहीं रह गया है। अब आपका जीवन आपकी जरूरतों के बारे में नहीं है क्योंकि वास्तव में अब आपकी कोई जरूरत ही नहीं है। आपकी जनता को हक है कि उन्हें एक आत्मज्ञानी राजा मिले। आपको उनका राजा बने रहना चाहिए।”

जनक अनिच्छा से महल में ही रहे और बहुत अच्छी तरह अपना राज-पाट चलाया। जनक अपनी जनता के लिए एक वरदान थे क्योंकि वह एक पूर्ण आत्मज्ञानी व्यक्ति होते हुए भी राजा का कर्तव्य निभा रहे थे।

भारत में कई साधु-संत पहले राजा और सम्राट थे, जिन्होंने अपनी इच्छा से सब कुछ छोड़ दिया और बहुत गरिमा के साथ भिक्षुकों की तरह रहने लगे। गौतम बुद्ध, महावीर, बाहुबली,ऐसे बहुत से लोग हुए हैं। मगर *एक आत्मज्ञानी राजा होना दुर्लभ चीज थी।* जनक राजा बने रहे मगर राजकाज की जिम्मेदारियों से उन्हें जितनी बार थोड़ी फुर्सत मिलती, वह अष्टावक्र से मिलने उनके आश्रम चले जाते थे।

अष्टावक्र के शिष्य राजा जनक से चिढ़ने लगे

आश्रम में अष्टावक्र ने कुछ भिक्षुओं को जमा किया था, जिन्हें वह शिक्षा देते थे। ये सभी भिक्षु धीरे-धीरे जनक

से चिढ़ने लगे क्योंकि जब भी जनक आते, अष्टावक्र सब कुछ छोड़कर उनके साथ ढेर सारा समय बिताते क्योंकि दोनों के बीच बहुत अच्छा तालमेल था। जैसे ही जनक आते, दोनों खिल उठते। जिन भिक्षुओं को अष्टावक्र शिक्षा दे रहे थे, उनके साथ वह उस तरह नहीं चमकते थे। इससे भिक्षु बहुत नाराज रहते थे।

भिक्षु एक-दूसरे के कान में फुसफुसाते, “हमारे गुरु ऐसे आदमी के हाथों क्यों बिक गए हैं? लगता है कि हमारे गुरु भ्रष्ट हो रहे हैं। यह आदमी एक राजा है, महल में रहता है। उसके पास बहुत धन-दौलत है। उसके चलने का अंदाज देखो। वह राजा की तरह चलता है और उसके कपड़े देखो,आभूषण देखो। उसके अंदर कौन सी चीज आध्यात्मिक है कि हमारे गुरु उस पर इतना ध्यान

देते हैं? यहां हम अपनी आध्यात्मिक प्रक्रिया के लिए पूरी तरह समर्पित हैं। हम भिक्षु के रूप में उनके पास आए हैं, मगर वह हमें अनदेखा कर रहे हैं।'

अष्टावक्र ने भिक्षुओं को समझाया सच्चे समर्पण का अर्थ

अष्टावक्र ने भिक्षुओं की फुसफुसाहट सुनी तो एक योजना बनाई। वह एक कक्ष में भिक्षुओं के साथ बैठे उन्हें उपदेश दे रहे थे, वहां राजा जनक भी मौजूद थे। जब प्रवचन चल रहा था, तभी एक सिपाही दौड़ते हुए कमरे में आया। वह जनक के आगे झुका, मगर अष्टावक्र के सामने नहीं और बोला, "महाराज, महल में आग लग गई है। सब कुछ जल रहा है। पूरे राज्य में हंगामा मचा

हुआ है।” जनक खड़े होकर सिपाही पर चिल्लाए, “निकलो यहां से। यहां आकर सत्संग में बाधा डालने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई और तुम्हारी इतनी मजाल कि तुमने मुझे प्रणाम किया और मेरे गुरु को नहीं! तुरंत यहां से निकल जाओ।” सिपाही कमरे से भाग गया। जनक फिर बैठ गए और अष्टावक्र ने प्रवचन देना जारी रखा।

कुछ दिन बाद, अष्टावक्र ने एक और काम किया। सभी लोग फिर से प्रांगण में बैठे हुए थे और अष्टावक्र प्रवचन दे रहे थे। प्रवचन के बीच में ही आश्रम का एक सहायक दौड़ते हुए कमरे में आया और बोला, “बंदरों ने सूख रहे सभी कपड़े उतार लिए हैं और भिक्षुओं के कपड़े फाड़ रहे हैं।” सभी भिक्षु तुरंत उठकर अपने कपड़ों को बचाने

भागे। वे नहीं चाहते थे कि बंदर उनके कपड़े खराब कर दें। मगर जब वे कपड़े सुखाने वाली जगह पहुंचे, तो वहां कोई बंदर नहीं था और उनकी लंगोटें अभी भी वहां लटक रही थीं। उन्हें बात समझ में आ गई। वे सिर झुकाकर वापस आ गए।

त्याग और आध्यात्मिकता का बाहरी कामों से कोई लेना देना नहीं है:

अष्टावक्र ने अपने प्रवचन के दौरान समझाया:

"यह देखो। यह आदमी राजा है। कुछ दिन पहले उसका महल जल रहा था। पूरा राज्य तहस-नहस हो रहा था। इतनी दौलत जल रही थी, मगर उन्हें चिंता इस बात की थी कि उनके सिपाही ने सत्संग में बाधा डाल दी थी। तुम लोग भिक्षु हो। तुम्हारे पास कुछ नहीं है। तुम्हारे पास महल नहीं है,पत्नी नहीं है, बच्चे नहीं हैं, तुम्हारे पास कुछ नहीं है लेकिन जब बंदरों ने

आकर तुम्हारे कपड़े उठाए तो तुम लोग उन्हें बचाने के लिए भागे। तुम लोग ऐसे कपड़े पहनते हो जिनका ज्यादातर लोग पोंछा तक नहीं बनाएंगे। मगर उस लंगोट के लिए भी तुम लोग मेरी बातों पर ध्यान दिए बिना उन बेकार कपड़ों को बचाने के लिए भागे। कहां है तुम्हारा आत्मत्याग? वह असली आत्मत्यागी हैं। वह राजा होते हुए भी त्यागी हैं। तुम लोग भिक्षु हो। दूसरों की त्यागी हुई चीजों का प्रयोग करते हो, मगर तुम्हारे अंदर आत्मत्याग की कोई भावना नहीं है। देखो तुम कहां हो और वह कहां हैं।"

एक व्यक्ति अपने अंदर कैसा है?

इस बात का कोई महत्व नहीं कि कोई व्यक्ति बाहिर से कैसा है। महत्वपूर्ण यह है कि कोई व्यक्ति भीतर कैसा है। बाहरी दुनिया के साथ आप क्या करते हैं, ये सामाजिक चीजें होती हैं। आप जिन स्थितियों में रहते हैं, उनके अनुरूप खुद को संचालित करते हैं। उसका

सामाजिक महत्व है मगर आध्यात्मिक महत्व कोई नहीं है। आप अपने अंदर कैसे हैं, बस यही बात मायने रखती है। लेकिन विडंबना है कि हमारे चारों तरफ अधिकतर लोग बाहरी दुनिया में ही विचार रहे हैं क्योंकि अध्यात्म का पथ कठिन जो है।